हरिजन उत्कर्ष के लिए

बड़े कदम

उठें

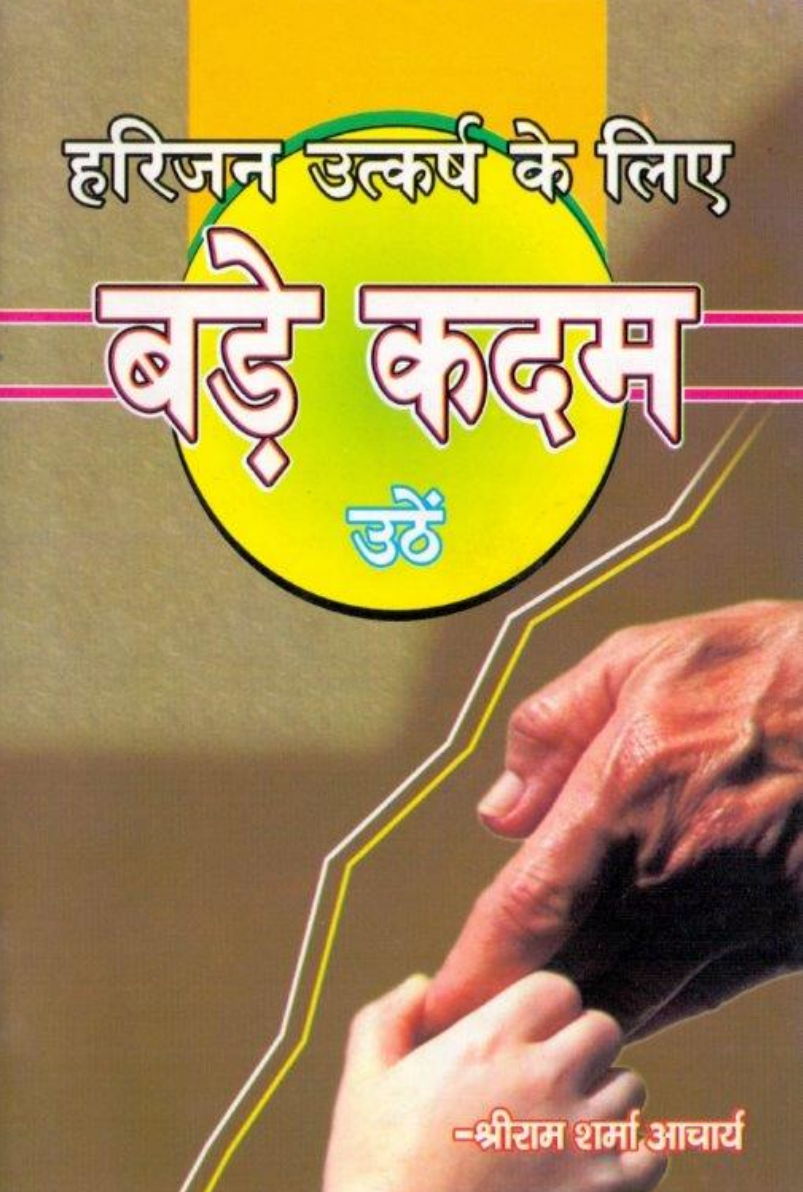

-श्रीराम शर्मा आचार्य

हरिजन उत्कर्ष के लिए बड़े कदम उठें

भारतीय समाज को दुर्बल और कलंकित करने वाली कुप्रथाओं में ऊँच–नीच और छूत–छात का स्थान सबसे ऊँचा है । मनुष्य–मनुष्य एक समान हैं । ईश्वर ने उन्हें एक ही साँचे–ढाँचे में बनाया है । धर्म और जाति का विभागीकरण मनुष्यकृत है । कार्य–पद्धति की सुविधा के लिए कोई वर्ण, वर्ग बन सकते हैं, उनके नाम संकेत भी अलग हो सकते हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं कि किसी को मानवोचित नागरिक अधिकारों से इसलिए वंचित किया जाय कि वह तथाकथित पिछड़ी हुई जाति में पैदा हुआ है । इसी प्रकार किसी को इस कारण भी अपने को ऊँचा समझने का अहंकार न करना चाहिए कि वह अमुक तथाकथित उच्च कुल में पैदा हुआ है । मनुष्यों की उत्कृष्टता–निकृष्टता उसके गुण, कर्म, स्वभाव पर निर्भर रहती है, वंश पर नहीं । यही उचित और यही विवेक संगत है । किन्तु दुर्भाग्य से हिन्दू समाज में ऐसी प्रथा चल पड़ी है कि अपने ही समाज, धर्म, एक वंश, देश और संस्कार के व्यक्तियों को नीच, अछूत आदि कहकर उन्हें तिरस्कृत–बहिष्कृत जैसी स्थिति में पटक दिया गया है ।

आज के जनतान्त्रिक और मानवीय अधिकारों की मान्यता वाले युग में इस प्रकार की अन्याययुक्त मान्यताओं के लिए कोई स्थिति नहीं हो सकती कि गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से अपने ही जैसे लोगों को अछूत कहकर अलग–अलग कर दिया जाय । इससे हिन्दू समाज की पिछले दिनों अपार हानि हुई है, यदि समय रहते इस मूढ़ता में सुधार न किया गया तो वह दिन दूर नहीं जब हिन्दू–जाति को अपने अस्तित्व से, वर्चस्व से हाथ धोने के लिए तैयार रहना होगा । छूआछूत और ऊँच–नीच की इस अन्यायमूलक सामाजिक दुष्प्रवृत्ति को दूर किए बिना भारतीय राष्ट्र वांछित गति से प्रगति नहीं कर पायेगा । भारत की प्रगति का पथ–प्रशस्त करने के लिए अनेक शर्तों में एक शर्त यह भी है कि भारत की अछूत जाति का उद्धार किया जाये । उसमें फैली अशिक्षा तथा अन्ध–विश्वास को दूर किया जाये । उनके जीवन को परिष्कृत एवं उन्नत बनाया जाए । उनके विकास प्रयत्नों को इतनी तेजी

से आगे बढ़ाया जाय कि अछूत जाति शीघ्र ही प्रबुद्ध एवं परिष्कृत होकर हिन्दू समाज का एक समान अंग बन सके ।

यद्यपि स्वामी दयानन्द, महात्मा गाँधी, लाला लाजपतराय तथा ठक्कर बापा प्रभृति महापुरुषों ने अछूतों का उद्धार करने के लिए बहुत कुछ किया और इस दिशा में अछूत वर्ग में कुछ चेतना और हिन्दू–जाति में विचार प्रबोध भी हुआ किन्तु केवल थोड़ी–सी हलचल से अथवा कभी–कभी किसी व्यक्ति के इस ओर कार्य करने मात्र से ही चिरकाल से पिछड़ी अछूत जाति का अभिशाप हिन्दू समाज पर से दूर न होगा । इसके लिए एक व्यापक कार्यक्रम तथा अधिक से अधिक कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता होगी । कभी कोई व्यक्ति अछूतों के सुधार के लिए काम करता है । कुछ प्रगति भी होती है, पर उस व्यक्ति विशेष के साथ ही अछूतोद्धार का आन्दोलन भी समाप्त हो जाता है । आज आवश्यकता है कि आन्दोलन राष्ट्रव्यापी बने और जिससे सभी वर्गों और स्वयं अछूत जाति वाले अपना सुधार करने के लिए यथासाध्य कार्यक्रमों में संलग्न हों ।

अवांछनीय भेदभाव–

हिन्दू जाति में इस समय दो वर्ग हैं । एक सवर्ण और दूसरा अवर्ण अथवा अछूत । अछूतों का एक बहुत बड़ा वर्ग जिसे हरिजन भी कहा जाता है । हिन्दू जाति का एक अंग होने पर भी कतिपय कारणों से उससे अलग पड़ा हुआ है । इस वर्ग के लोगों को अन्य वर्गीय हिन्दू छूने तक में घृणा किया करते हैं । अपना होते हुए भी हम अपने जिस भाई से कोई सम्बन्ध नहीं रखते वह न होने के बराबर ही है । सवर्णों तथा अवर्णों की इस पृथकता का लाभ उठाकर अन्य ईसाई आदि जातियाँ अछूतों को तरह–तरह से बहकाकर हिन्दू जाति से अलग करके अपने धर्म में दीक्षित करती जा रही हैं । अछूतों के इस निर्गमन से हिन्दुओं को क्या आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक हानियाँ हो रही हैं और आगे चलकर क्या राष्ट्रीय हानि हो सकती है, इसकी विवेचना की आवश्यकता नहीं । हर विचारवान व्यक्ति इसको अच्छी तरह जानता है । आवश्यकता इस समय इस बात की है कि अछूतों का सुधार कर,

उन्हें शिक्षित तथा सुसंस्कृत बनाकर हिन्दू जाति का उसी प्रकार अभिन्न अंग बनाया जाये जिस प्रकार सवर्ण जातियाँ । यह बात सही है कि कोई भी जाति, वर्ग अथवा व्यक्ति तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक कि वह अपनी उन्नति का प्रयास खुद नहीं करेगा । दूसरे लोग तो उसे परामर्श दे सकते हैं, मार्ग बतला सकते हैं और कुछ सहायता कर सकते हैं । अपनी दशा सुधारने के लिए अछूतों को स्वयं ही प्रयास करना चाहिए । फिर भी हिन्दुओं का प्रगतिशील वर्ग तथा दूरदर्शी सवर्ण–वर्ग उनको उठाने एवं सुधारने में यथासम्भव सहयोग करे ।

उनका पहला सहयोग तो मानसिक तथा भावनात्मक होना चाहिए । उन्हें अछूतों के प्रति अपने घृणा भाव को दूर करना और उनमें इस सम्बन्ध का विश्वास पैदा होना चाहिए । इसके लिए उन्हें अपने पिछड़े संस्कार की जगह देश, काल के अनुसार प्रगति संस्कार डालने के लिए प्रयत्न करना चाहिए । इसके लिए विचार करना, साहित्य पढ़ना तथा मानव मूल्यों का मनन करना उपयोगी होगा । सवर्णों को चाहिए कि वे किसी अछूत के मिलने पर कोई ऐसा भाव अथवा व्यवहार व्यक्त न करें जिससे तिरस्कार अथवा घृणा का अनुभव हो । सवर्ण हिन्दुओं का यह स्वयं का संस्कार सुधार भी हरिजन उद्धार की दिशा में एक सक्रिय कार्यक्रम ही है ।

धर्म नहीं सामाजिक विकृति–

इस प्रकार की छूआछूत सामाजिक विकृति है कोई शास्त्रीय नियम नहीं । मनुष्य–मनुष्य को घृणा करे, ऐसा आदेश कोई भी धर्म अपने अनुयायियों को नहीं देगा और यदि ऐसा अमानवीय उल्लेख कहीं पर पाया जाता है तो उसे क्षेपक ही समझना चाहिए और यह मानकर चलना चाहिए कि किसी अन्धकार काल में यह नियम तो किसी विरोधी का आरोपित कराया हुआ है अथवा किसी समय समाज को ऐसे नियम की आवश्यकता रही होगी किन्तु अब इसे अनुपयोगी ही नहीं हानिकारक आपद् नियम को बदल ही देना चाहिए ।

इस प्रकार की विचार दृष्टि से अछूतों के प्रति घृणा दिखलाना अथवा रखना किसी प्रकार उचित नहीं है । मानव, मानव के बीच

समानता तथा पारस्परिक प्रेम–भाव किसी भी धर्म का मूल सत्य है । अन्य सब बातें तो गौण तथा देशकालीन ही हुआ करती हैं । विशेषतया हिन्दू धर्म तो मानव–मानव को ही नहीं जीव मात्र की समानता तथा एक परमात्मा की सन्तान मानने में विश्वास करता है । इस न्याय के आधार पर सवर्ण हिन्दुओं को अपने मूल धर्म का सम्मान करते हुए अछूतों के प्रति अपनी घृणा भावना को दूर करना ही चाहिए ।

धर्म भेद नहीं सिखाता

चातुर्वर्ण मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः ।

गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है–"चारों वर्णों की सृष्टि मैंने गुण और कर्म के आधार पर की है । लेकिन आज यह जन्म के आधार पर निर्धारित होती है । भूतकाल में पूरी तरह समता और एकता की भावना थी ।

धीरे–धीरे व्यक्तियों में जन्म जाति प्रथा का आरम्भ हुआ और लोग अपने जातीय स्वार्थों में फँसकर दूसरों से अपने को भिन्न करने लगे । आज जाति प्रथा के बन्धन इतने संकीर्ण हो गये हैं कि वे एक–दूसरे के हाथ का पानी पीना भी पसन्द नहीं करते । अपने कर्म के आधार पर दिया व्यवसाय करने वाले ब्राह्मण सेवा करने वाले हरिजनों को इतना निम्न मानने लगे कि उनकी परछाई भी पड़ने पर स्नान करते । ऐसी स्थिति में भारत का सामाजिक पतन आरम्भ हो जाता है ।

भारतीय धर्म शास्त्रों में अस्पृश्यता का विधान माना है, अगर उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके देखा जाये तो मूल उनका दूसरा निकलता है । यजुर्वेद के ३० वें अध्याय में कहा है–

मृत्युवे मृगयुम अन्तकाय श्वनिनम् ।।

अनुवाद–मृत्यु को प्रवृत्त हुए व्याघ्र को तथा अति करने वाले को, एवं बहुत कुत्ते पालने वाले को अलग बसाइये ।

हिंसक तथा बहुत शिकारी कुत्ते पालने वाले चाण्डालादि, जिनसे अधिक गन्दगी फैलने की आशंका हो, जिनसे पाप और बुराई फैलने की आशंका हो उन्हें सामान्य से अलग बसाया जाये ।

वायवे चाण्डालम् ।।

वायु के स्पर्श के अर्थ चाण्डाल को दूर करें ।

अर्थात् माँस व्यवसायी का गन्दा वातावरण दुर्गन्धित रहता है । क्रूर स्वभाव के कारण उसके घर का वातावरण अशान्तकर होता है, अस्तु वायु के साथ जब वह दुर्गन्ध अन्यत्र पहुँचती है, तो सभी के स्वास्थ्य को बिगाड़ती है ।

इन सब कारणों की ओर ध्यान न देकर केवल जाति प्रथा के आधार पर हरिजन लोगों को इतना गिरा दिया गया कि उनके विकास का हर मार्ग अवरुद्ध हो गया । न तो उन्हें साथ बैठाने का, सामूहिक आयोजनों में भाग लेना तो दूर देखने तक का अधिकार न दिया गया । किन कारणों के आधार पर किसी को चाण्डाल ठहराया जाना चाहिए । उन विवेक विचारों का परित्याग कर मात्र जाति–पाँति के आधार पर किसी को हेय ठहरा दिया जाय तो यह अन्याय ही कहा जायगा ।

यह कैसी विडम्बना है । मानव होते हुए भी मानवों के बीच में इस प्रकार की दीवार खड़ी की जाय ।

यदि देश की एकता बनाये रखनी है और समाज को विघटन से बचाना है तो इस ओर कदम उठाना ही पड़ेगा । उन्हें शिक्षा, व्यवसाय और हर क्षेत्र में समान अधिकार दिया जाना चाहिए । इस ओर दयानन्द सरस्वती द्वारा रखी गई नींव पर राजा राममोहन राय और महात्मा गाँधी के प्रयास और त्याग की एक–एक ईंट मिलने पर भवन का निर्माण हुआ । सरकार द्वारा भी इस ओर नये–नये कानून पास किए गये जिनमें हरिजनों की उन्नति और सुविधाओं को विशेष स्थान दिया गया ।

हरिजनों की पूर्व स्थिति को देखकर उनकी आधुनिक स्थिति में काफी सुधार हो रहे हैं । प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि इस कर्मक्षेत्र में योगदान अवश्य दे ।

महापुरुष द्वारा लगाये इस बाग को सींचना प्रत्येक नागरिक अपना कर्तव्य समझ लेगा एवं इस भारत भूमि के बगीचे को सींचेगा तभी हरिजन रूपी कुसुम सुगन्धित और प्रफुल्लित हो सकेंगे ।

इस कलंक को पूरी तरह मिटाना ही होगा

अस्पृश्यता का जो स्वरूप पहले था उसमें काफी सुधार हुआ है, किन्तु प्रगति की गति बहुत मन्द रही । भारत को स्वतंत्र हुए पच्चीस वर्ष हो गये । आज भी यदा–कदा ऐसी घटनाऐं घटित होती रहती है । जिनमें अछूत तथा पिछड़े वर्ग पर सवर्णों का अत्याचार होता है । उन्हें समानता के अधिकार का उपयोग करने में लोग बाधक बनते हैं ।

एक समय हरिजनों की यह स्थिति थी कि वे गाँव या नगर से दूर अपनी पृथक बस्तियों में रहते थे । उन्हें छूना तक पाप समझा जाता था । समाज सुधारकों का समाज के इस कोढ़ पर ध्यान गया । स्वामी दयानन्द, महात्मा गाँधी आदि महापुरुषों ने इस कोढ़ का उपचार करने का पूरा–पूरा प्रयास किया, जिससे स्थिति में सुधार हुआ ।

स्वतंत्रता पाने के पश्चात् सरकारी तौर पर अस्पृश्यता को मिटाने का प्रावधान रखा गया । इस वर्ग को समानता के स्तर पर लाने के लिए न्याय तथा सुरक्षा की व्यवस्था की, जो इन्हें अपने समानता के अधिकार का उपयोग नहीं करने देते उन्हें दण्डित करने का भी प्रबन्ध किया गया ।

सार्वजनिक स्थलों पर इन लोगों को सरकारी तौर पर प्रवेश दिलाया गया । अल्पाहार गृह तथा क्षौर गृह आदि जन सामान्य के उपयोग में आने वाली निजी दुकानों में इनका प्रवेश कराया गया इस प्रकार इस सामाजिक विकृति को मिटाने का प्रयास किया गया ।

हमारे संविधान ने प्रत्येक भारतीय नागरिक की तरह हरिजनों को भी समता का अधिकार दिया है । शताब्दियों से दबे–पिसे इस वर्ग को समानता के स्तर तक लाने के लिए विशेषाधिकार भी प्रदान किये गये । अस्पृश्यता को वैधानिक अपराध घोषित किया गया । इन वैधानिक अधिकारों तथा दी गई विशेष सुविधाओं के कारण अस्पृश्यता कम तो हुई है किन्तु वह बिल्कुल समाप्त नहीं हो सकी है ।

कानून से किसी बात को मनवाया तो जा सकता है किन्तु उसका स्थाई प्रभाव नहीं होता । स्थाई प्रभाव तो मनुष्यों के विचारों में परिवर्तन तथा उनके विवेक को जगाने से ही हो सकता है । कानून का

भय तभी तक रहता है, जब तक उसकी पकड़ से बचने की सामर्थ्य उसे तोड़ने वाला नहीं जुटा लेता । अनैतिकता दिन प्रति दिन बढ़ती जाती है । नैतिकता न रहे तो कानून का पालन कराने वाले अधिकारियों को पैसे के बल से खरीदा जाना आसान होता जाता है । कानून केवल पुस्तकों की व कागजी विधानों की परिधि में ही बँधकर रह जाता है ।

शरीर बुद्धि तथा मन की शक्तियों को ईश्वर ने समान रूप से मनुष्यों को वितरित किया है । उसने कोई भेदभाव किसी के साथ नहीं बर्ता । यह तो सभी मानते हैं, यह समाज का एक अभिन्न अंग है शरीर के एक अंग पर लगने वाला घाव शरीर को पीड़ा पहुँचाता है । उसी प्रकार समाज के एक तिहाई भाग को ऊपर उठाने का पूरा–पूरा प्रयास न करना समाज के लिए किसी भी प्रकार श्रेयस्कर नहीं हो सकता । यह अपनी ही प्रगति में गतिरोध उत्पन्न करता है ।

सरदार भगतसिंह से फाँसी के फन्दे को चूमने के पूर्व उनकी अन्तिम इच्छा पूछी गयी । उन्होंने कहा–"मैं अपनी माता के चरण स्पर्श करना चाहता हूँ । इस पर जेल के अधिकारियों ने अपनी असमर्थता प्रकट की । उसका समाधान अमर शहीद ने इन शब्दों में किया–"मेरी माँ ने मुझे जन्म दिया । उस माँ से भी बड़ी माँ मेरी यहाँ है, जो नित्य मेरा पाखाना साफ करने वाली जेल सफाई कर्मचारी महिला । कोख से उत्पन्न करने वाली माँ अपना समझ कर मेरी टट्टी बचपन में साफ करती थी, पर यह तो उससे भी महान है ।" उन्होंने अन्तिम समय जेल की मेहतरानी के पाँव स्पर्श किए–एक बेटे की तरह । इन उपकारियों का यह सच्चा मूल्यांकन था ।

व्यक्ति को नापने का कोई मापदण्ड है तो उसका चरित्र तथा समाज को उससे मिलने वाला अनुदान । किसी वंश में अथवा किसी के घर में उत्पन्न होने से वह छोटा नहीं हो जाता । सन्त रैदास अपने उत्तम आचरण तथा कर्तृत्व के कारण सन्त कहलाये । मीरा जैसी राजरानी ने उन्हें अपना गुरु वरण किया । किन्तु जन्म से जाति मानने की मूढ़ मान्यता से ग्रस्त लोगों ने उन्हें अछूत ही माना ।

भारत का संविधान बनाने की बात आयी तो डॉ. भीमराव

अम्बेडकर को ही यह महत्वपूर्ण कार्य सौंपना पड़ा। डॉ. अम्बेडकर महार (अछूत) कुल में उत्पन्न होने के कारण जीवन भर सताये गये, जबकि वे कानून के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्हें अपने जीवन के अन्तिम दिनों में हिन्दुओं के इन संकीर्ण विचारों के कारण बौद्ध धर्म अंगीकार करना पड़ा।

समाज से तिरस्कृत होकर कई व्यक्ति अपना धर्म परिवर्तित कर लेते हैं। उन्हें इस जातिवाद के जंजाल से उबरने का एक मात्र यही रास्ता दिखाई देता है। भारतवर्ष में मुसलमान तथा ईसाई बनने वालों में ९० प्रतिशत व्यक्ति अछूत माने जाने वाले होते हैं। यही कारण है कि हिन्दू मतावलम्बियों की संख्या निरन्तर घटती जा रही है। हमारी रैदास तथा अम्बेडकर जैसी विभूतियों का लाभ वे लोग उठा रहे हैं तथा भारतीय धर्म संस्कृति का हनन कर रहे हैं।

हमारे धर्मशास्त्रों में चार वर्णों का ही उल्लेख है। ये वर्ण हैं–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। जब तक ये जन्म से नहीं कर्म से माने जाते रहे तब तक हमारा देश विश्व गुरु बना रहा। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने अपनी पत्नी को निर्वासित कर महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में रखा जो कि शूद्र कुल में जन्मे थे। अपने कर्मों से वे महर्षि बने।

जब से जाति का आधार जन्म माना जाने लगा। शूद्र कुल में उत्पन्न होने वाला शूद्र माना जाने लगा, उसी समय से हमारा पतन होना आरम्भ हो गया। इसका दण्ड भी हमने कम नहीं भोगा है। सदियों की दासता सहनी पड़ी। ज्ञान, विज्ञान के शिखर पर पहुँची यह जाति अज्ञान के अन्धकार में भटकने को विवश हुई।

अवसरवादी तथा स्वार्थी तत्वों ने अपने स्वार्थ के लिए धर्म शास्त्रों को विकृत कर दिया। स्त्रियों तथा शूद्रों को द्विजत्व के अधिकार से वंचित करने का षड्यन्त्र रचा गया। एक–तिहाई शूद्र तथा आधा भाग नारी जाति के बाद बचता ही क्या है, जो अपने कन्धों पर समाज का भार उठा सके।

यह संकीर्णता ज्यों–ज्यों बढ़ती गई त्यों–त्यों हम गिरते चले गये। समाज सेवा का काम करने वाले समाज सेवी वर्ग को उपेक्षा का पात्र ही नहीं बनाया गया। उसे पशु से भी नीचा माना जाने लगा। पशु

को छूने से अपवित्र नहीं हो जाते, पर अछूत की छाया से ही अपवित्रता के बहाने बनाये जाने लगे । अपने ही भाइयों को इस प्रकार हेय मानने की विडम्बना में फँसकर यह जाति अपना वर्चस्व खोने लगी ।

भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् अब यह आशा और विश्वास जागा है कि यह देश अपने प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त करेगा । यह तभी सम्भव हो सकेगा जब कि भारत की अछूत तथा पिछड़ी कही जाने वाली जातियाँ भारतीय समाज में सवर्ण कहे जाने वाले व्यक्तियों के समान स्तर पर आ जायें । आर्थिक, सामाजिक तथा बौद्धिक स्तर पर जब तक समानता नहीं आती तब तक समाज का लँगड़ापन मिट नहीं सकता ।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए संविधान में ऐसी व्यवस्था रखी गई कि प्रगति की दौड़ में पिछड़े ये सारे भाई आगे आयें । महात्मा गाँधी ने स्वराज्य नहीं सुराज्य व रामराज्य के स्वप्न संजोये थे, जिसमें सब समान हों । वे हरिजन उत्थान को कितना आवश्यक मानते थे इसका अनुमान उनके इस कथन से सहज ही लगाया जा सकता है–"हे ईश्वर मुझे मनुष्य योनि में जन्म मिले तो मुझे मेहतर के घर उत्पन्न करना ।" उन्होंने अपने जीवन में इस विषमता को मिटाने के लिए अथक परिश्रम किया ।

संविधान में विशेषाधिकार रखे जाने तथा अस्पृश्यता को कानूनी अपराध घोषित करने से स्थिति में सुधार हुआ है । इससे सहमत होना ही पड़ेगा । किन्तु केवल इन्हीं के बलबूते पर अस्पृश्यता जड़–मूल से उखड़ जायेगी ऐसा सम्भव नहीं । इसके लिए जन मानस में जड़ जमा कर बैठी हुई मूढ़ मान्यताओं को मिटाने के लिए प्रत्येक विवेकशील भारतवासी को अथक परिश्रम करना होगा ।

जो वर्ग शताब्दियों से दबा, घुट रहा है । वह अपने ही जोर से उठ खड़ा हो उसमें तो बहुत समय लगेगा । उसे हाथ पकड़कर उठाने की आवश्यकता है । वे ही अपने अधिकारों की माँग करें, उन्हें पाने के लिए संघर्ष करें तो प्रगति धीमी ही होगी । उनको समान स्तर पर लाने के लिए दूसरे भी मदद करें । ऐसे प्रयास किए तो जाते हैं किन्तु रोड़े अटकाने के प्रयास भी कम नहीं होते हैं ।

आज के समय में भी कई मन्दिर ऐसे हैं जहाँ हरिजनों का प्रवेश निषिद्ध है । भेदभाव की दीवारें अभी पूरी तरह टूटी नहीं हैं । यदि यह दीवारें टूट गई होतीं, तो समय–समय पर घटित घटनाओं के उदाहरण देखने को नहीं मिलते ।

भारत अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करे वह समय आ उपस्थित हुआ है । हमारी संस्कृति की ओर आज सारा विश्व आशा भरी निगाहों से देख रहा है । भौतिकता की अन्धी दौड़ से थका हुआ मनुष्य आज इस संस्कृति के विशाल वट–वृक्ष की छाँह में सुख की नींद सोना चाहता है ।

नीचे लुढ़कने के दिन लद गये । अब तो उतुंग शिखरों पर हमारा धर्म ध्वज फहराने वाला है । कल जो भूमि पर पड़ा था आज वह आकाश को छू लेने को उठ खड़ा हो रहा है । क्या सतृष्ण नयनों से निहारते विश्व को ऋषियों की पुण्य स्थली यह भारतवर्ष निराश कर देगा । कमी किसी वस्तु की नहीं है । हमारे पूर्वज हमें बहुत बड़ी थाती सौंप गये हैं । हम उसकी थाती को उस देवोपम ज्ञान के प्रकाश को विश्व में वितरित करें उसके पहले अपने चेहरे पर लगी इस अस्पृश्यता की कलंक कालिमा को पूरी तरह धो लें ।

भारत के विवेकशील नागरिकों का रक्त यदि पानी नहीं हुआ है, तो उन्हें अपने इन भाइयों को गले लगाने में तनिकी हिचकिचाहट नहीं हो, विदेशों से आकर धर्म प्रचार करने वाले ईसाई मिशनरियों के उदाहरण हमारे सामने हैं । वे जब धर्म प्रचार के नाम पर यहाँ आकर उनकी सेवा कर सकते हैं तो क्या हम अपने भाइयों को बराबर नहीं ला सकते हैं ?

आज की बढ़ती हुई अनैतिकता की बाढ़ मनुष्य को निरन्तर उसके गौरव से गिरा रही है । संविधान और कानून से ही यदि यह छुआछूत का दानव परास्त हो गया होता तो आजादी के इन ४५ वर्षों में यह वर्ग भेद पूरी तरह समाप्त हो गया होता ।

स्वेच्छा से अत्यन्त महत्वपूर्ण किन्तु अत्यन्त कष्ट साध्य सेवा का कार्य अपनाने वाले इन बन्धुओं को गले लगाने के लिए हमने अपनी बाहें नहीं पसारी तो कल कोई सेवा करना नहीं चाहेगा । यह लँगड़ा समाज कभी स्वस्थ नहीं होगा । हमारे अन्तःकरण में प्रगति करने तथा गौरव

गरिमा पाने की हूंक यदि उठती हैं तो हमें इस कलंक को धोने के लिए आगे आना ही चाहिए ।

सवर्ण हिन्दू यह करें–

इस मानसिक सुधार के साथ–साथ सवर्ण हिन्दुओं को कतिपय व्यावहारिक कार्यक्रमों को भी कार्यान्वित करना चाहिए । अस्पृश्यता निवारण हिन्दू समाज की ऐसी समस्या है जिसके हल के साथ इस समाज का आगामी भविष्य जुड़ा हुआ है । इसलिए इसको हल करने में हर सवर्ण को भी यथासाध्य सहयोग करना ही चाहिए । अछूतोद्धार के कतिपय कार्यक्रमों में अछूत बच्चों की पढ़ाई भी एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है ।

सरकारी नीतियों तथा समाज सेवकों के उदार प्रयत्नों के फलस्वरूप पाठशालाओं में हरिजनों के बच्चे पढ़ने आने लगे हैं किन्तु अभी भी वे देहाती पाठशालाओं में डरे–डरे, बहिष्कृत से एक ओर बैठे रहते हैं । सवर्ण अधिकतर उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देते हैं ।

अध्यापकों का रुख तथा व्यवहार देखकर कक्षाओं के चपल तथा चतुर छात्र तो उनका उपहास उड़ाते हुए खिजाते तक हैं । जिसका फल यह होता है कि कुछ ही समय में वे पाठशाला छोड़कर घर बैठ रहते हैं । उनके संस्कार सुधार की सारी आशाऐं समाप्त हो जाती है । हरिजन बच्चों के बहिष्कार की यह प्रवृत्ति ठीक नहीं । अध्यापकों को चाहिए कि वे उनके साथ अन्य सवर्ण बच्चों के समान ही व्यवहार करें, उन्हें प्रेम तथा सहानुभूति का स्पर्श दें, जिससे उनमें आत्म–विश्वास जागे, उनकी हीन भावना दूर हो और पढ़ने–लिखने में उनका मन लगे । अध्यापकों को विचार करना चाहिए कि जब उन्हें हरिजन बच्चों को पढ़ाने की विवशता ही आ पड़ी है, तो वे सरकारी नियमों अथवा परिस्थितियों के कारण बच नहीं सकते तो फिर उन्हें यह काम खुशी से उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से करना चाहिए और फिर अछूत बच्चों को पढ़ाना, उनसे स्नेह का व्यवहार करना कोई ऐसा अकरणीय कार्य नहीं है जिसे करने से उनको लोक अथवा परलोक में कोई दण्ड भोगना पड़ेगा । यह तो समाज सुधार तथा राष्ट्र निर्माण का श्रेयस्कर कार्य है ।

जूठन न दें, न लें–

हिन्दू समाज में यह एक कुप्रथा चली आ रही है कि अछूत प्रजाओं को जो कुछ पहनने–ओढ़ने या खाने–पीने के लिए दिया जाये वह झूठा और उतरा हुआ ही दिया जाये । यद्यपि समाज सुधारकों के प्रयत्नों तथा हरिजनों के स्वयं आत्मबोध जन्य आपत्ति के कारण यह परम्परा शिथिल होने लगी है । लोग उन्हें 'अनूठा' देने लगे हैं, पर समाज की इस विकृति को पूरी तरह से दूर किया जाना चाहिए । हरिजन प्रजाओं को यदि कुछ देना ही है तो स्वच्छ, अच्छा तथा अनूठा दिया जाये । लोगों का उच्छिष्ट खाने से उनके असंस्कृत संस्कार और विकृत हो जाते हैं और फिर किसी को जूठा देना अथवा खिलाना एक अधार्मिक कृत्य भी तो है । समाज के मान्य तथा सवर्ण लोगों को चाहिए कि वे इस अवांछनीय तथा अधार्मिक कृत्य के अभिशाप से बचें । हरिजन प्रजा तथा आश्रितों को जो कुछ भोजन, वस्त्र आदि दें जूठा नहीं अनूठा ही दें ।

यह सब जानते हैं कि हरिजनों को जूठन देने की कोई मजबूरी नहीं है । उन्हें देने के लिए अधिक परोसा जाकर जान बूझकर जूठन छोड़ी तथा तैयार की जाती है । व्याह–शादियों में तो पत्तलों पर बहुत–सा जूठा सामान छोड़ दिया जाता है, जो एक साथ किसी पात्र अथवा पत्तल पर इकट्ठा करके हरिजन कार्यकर्त्ताओं को दिया जाता है । कोई भी विचारवान व्यक्ति ध्यान से देखकर सहज ही यह अनुभव कर सकता है । इस प्रकार पंक्ति भर की जूठन इकट्ठी करके जो हरिजन सेवकों को दी जाती है, वह वास्तव में मनुष्य के खाने योग्य भी नहीं रहती । दाल, भात, चावल, मिठाई तथा भोजन को न केवल विकृत ही करना है बल्कि उसका अपमान भी करना है । जिसका प्रत्यक्ष न भी सही परोक्ष में आत्मा पर कुप्रभाव पड़ता है । इस उच्छिष्ठदान से देने वाले लेने वाले दोनों की तेज हानि होती है । यदि पत्तल के पदार्थों में हरिजन सेवकों को भागी बनाना ही है तो हर व्यक्ति उनका भाग पहले से ही निकाल कर अलग रख सकता है । इस प्रकार उनका हिस्सा भी उन्हें मिल जायेगा और उच्छिष्ठता का पाप भी नहीं लगेगा ।

इस प्रकार की विकृत जूठनदान की प्रथा में सुधार कर हरिजनों के उद्धार की दिशा में काफी सुधार किया जा सकता है । अनूठा भोजन उनके संस्कार शुद्ध करेगा, उनमें अधिकाधिक आत्मबोध उत्पन्न करेगा ।

सार्वजनिक स्थान सबके लिए–

मन्दिरों, शिवालयों, पनघट तथा घाटों पर उनको आने से न रोका जाय । पार्क, रेल, प्लेटफार्म आदि सार्वजनिक स्थानों पर उनके आने–जाने पर आपत्ति न की जाये । ऐसे स्थानों पर आते–जाते समय हरिजन अपेक्षाकृत कुछ स्वच्छ तथा शुद्ध ही रहते हैं, ऐसी दशा में कोई कारण नहीं कि उन्हें पास न बैठने दिया जाय अथवा उनके प्रवेश पर प्रतिबन्ध भावना व्यक्त की जाये । जब इस प्रकार के अनेक सार्वजनिक स्थानों पर कुत्तों, बिल्ली तक को आने–जाने से नहीं रोका जाता, तब एक हरिजन को ही क्यों ? क्या एक मनुष्य इन अशुद्ध तथा अपवित्रा पशुओं से भी गया–गुजरा है ।

प्रगतिशीलता की पुकार–

प्रगतिशील सवर्ण हिन्दू, रूढ़ियों से जिनके विचार अपेक्षाकृत अधिक मुक्त हो चुके हैं । हरिजनों के सुधार के लिए सक्रिय कदम उठायें और अपनी युग निर्माण योजना के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने का प्रयत्न करें ।

प्रगतिशील कार्यकर्त्ता हरिजन बस्तियों में जायें और अपने प्रयत्न से उनमें मानसिक चेतना तथा सामाजिक बोध का जागरण करें । उन्हें बतायें कि जैसा निकृष्ट जीवन उन्होंने हठपूर्वक अपना रखा है वह उनकी जाति–जन्म से भी अधिक, उनकी स्थिति को गिराये हुए है । उनके इस निम्न रहन–सहन के लिए समाज किसी प्रकार भी दोषी नहीं है । वे गरीब हो सकते हैं किन्तु गरीबी का परिणाम गन्दगी कदापि नहीं है । स्वच्छता तथा सफाई मनुष्य के हाथ की बात है । वे नित्य प्रति नहा–धोकर स्वच्छ रह सकते हैं । साबुन, रीठा, रेह आदि अनेक सस्ते साधनों से अपने कपड़े साफ कर सकते हैं । उनकी स्त्रियाँ झाड़–बुहार तथा लीप–पोत कर अपने घर–द्वार की सफाई कर सकती हैं । कभी–कभी सामूहिक रूप से श्रमदान की पद्धति से वे अपने

मोहल्लों तथा बस्तियों की भी सफाई कर सकते हैं । गन्दे जानवरों को घर के बजाय, अलग बाड़ा बनाकर रखा जा सकता है । कूड़े–कचरे का ढेर घरों के आस–पास लगाने के बजाय थोड़ी दूर हटकर किसी गढ़े आदि में डाला जा सकता है । इन सब बातों में पैसे की जरा भी जरूरत नहीं है । थोड़े से श्रम की आवश्यकता है जो कि हर व्यक्ति को करना ही चाहिए ।

प्रगतिशील स्वयं सेवक हरिजनो को समझाने के साथ–साथ टोली बना कर उनकी बस्तियों में जा सकते हैं और सफाई में उनको सहयोग दे सकते हैं । जब स्वयं सेवक जा–जाकर उन्हें बस्ती तथा घरों की सफाई रखने की प्रेरणा देने के साथ सक्रिय सहयोग करने को भी तैयार होंगे तो हरिजन अवश्य ही अपनी तथा घर द्वार की सफाई रखने के लिए तत्पर हो उठेंगे ।

प्रगतिशील स्वयं सेवकों को चाहिए कि वे हरिजनों को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए प्रोत्साहित करें और यदि हो सके तो उनके बच्चों को स्वयं ले जाकर पाठशाला में भरती करा दें । बालक–बालिकाओं की पाठशाला के साथ हरिजनों की प्रौढ़ पाठशालायें भी स्थापित होनी चाहिए और प्रयत्नपूर्वक उन्हें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए । कोई कारण नहीं कि यदि सवर्ण स्वयंसेवक उनके पास जाऐं और शिक्षा का महत्व बताते हुए उन्हें पढ़ने के लिए प्रेरित करें, तो उनमें से थोड़े बहुत लोग भी पढ़ने के लिए तैयार न हो जायें । हार्दिक प्रयत्नों का बड़ा प्रभाव पड़ता है । हरिजन स्त्रियों को शिक्षा सफाई की प्रेरणा देने के लिए अनेक प्रगतिशील महिलाऐं भी जा सकती है । किसी सुधार के लिए सेवा करना अपमान की बात नहीं है । महात्मा गाँधी, ठक्कर बापा आदि व्यक्तियों ने हरिजनों के सुधार का कार्य करते हुए अपना मूल्य ही बढ़ाया है । निःस्वार्थ भाव तथा सच्ची सामाजिक भावना से छोटा–छोटा काम करने में भी मनुष्य का मान बढ़ता ही है, घटने का तो प्रश्न ही नहीं उठता ।

हरिजन सुधार में अभिरुचि रखने वाले समाज सेवक हरिजन जातियों की सार्वजनिक सभायें आयोजित करके उन्हें अपना सुधार करने के लिए प्रेरित करने के साथ छोटे–छोटे ऐसे कार्यक्रम बतला सकते हैं

जिनको पूरा करने से वे स्वभावतः सुधार की ओर चल निकलेंगे । इसके अतिरिक्त उनकी बस्तियों में अवकाश के समय नित्य–प्रति रात्रि गोष्ठियाँ की जा सकती हैं । जिनमें उन्हें कथा वार्ता के माध्यम से जीवन तथा आचरण सुधार की शिक्षा दी जा सकती है । प्रगतिशील समाज सेवक अपनी अन्य गोष्ठियों तथा सभाओं में हरिजन उद्धार के विषय पर विचार–विमर्श कर सकते हैं । उनके सुधार की योजना बना सकते हैं और उपाय खोज सकते हैं । विचार गोष्ठियों तथा सार्वजनिक सभाओं के अवसर पर अन्य उत्साही व्यक्तियों को हरिजन सुधार टोलियों, दलों तथा समितियों में शामिल कर सकते हैं ।

अपने उत्कर्ष का आप प्रयत्न–

सवर्णों तथा प्रगतिशील सवर्णों को तो परिस्थिति के अनुसार हरिजन उद्धार के मानसिक तथा सक्रिय कार्यक्रम चलाने ही चाहिए साथ ही हरिजनों को स्वयं भी अपना सुधार करने के लिए कमर कसकर खड़ा हो जाना चाहिए । उन्हें इस बात का व्रत लेना चाहिए कि वे अपनी दशा आप बदल कर समाज को मजबूर कर लेंगे कि वह उनका मूल्य, महत्व समझें और उचित स्थान दें । अनेक पिछड़े तथा गिरे हुए समाजों, जातियों, राष्ट्रों तथा देशों ने अपने उद्योग बल पर देखते ही देखते अपनी उन्नति कर ली और संसार में अपना स्थान बना लिया, तब कोई कारण समझ में नहीं आता कि अपना सुधार आप करने जुट पड़ने से हरिजन समाज उन्नति नहीं कर सकता । जो स्वयं अपनी मदद करता है, उसकी मदद के लिए मानव–समाज तो क्या ईश्वर तक को मजबूर होना पड़ता है ।

पंचायतों का सुधार–

लगभग सभी हरिजन समाजों में जातीय पंचायतों की प्रथा है । उनकी जातीय पंचायतें उनके हर प्रकार के झगड़ों तथा प्रश्नों को हल किया करती है । यही नहीं वे असामाजिक कार्य करने वालों का हुक्का–पानी बहिष्कार आदि में के रूप दण्ड देने का भी अधिकार रखती हैं । किन्तु अधिकतर देखा जाता है कि अनुसूचित जातियों की पंचायतें उनके सुधार की दिशा में कोई काम नहीं करतीं ।

हरिजन भाइयों को चाहिए कि वे अपनी जातीय पंचायतों को सुधार समितियों में बदल लें । उनके समाज में पंचायतों का बहुत प्रभाव है । हर व्यक्ति पंचायत का निर्णय अवश्य मान लेता है फिर वह बिल्कुल अन्यायपूर्ण ही क्यों न हो । उन्हें चाहिए कि वे अपनी पंचायत के प्रभाव को सुधार की दिशा में उपयोग करें । हरिजन पंचों तथा चौधरियों को चाहिए कि वे एक अडिग नियम बना दें कि किसी भी पंचायत के समय कोई भी पंच अथवा सदस्य शराब नहीं पियेगा । जो शराब पीकर आयेगा वह या तो पंचायत में शामिल नहीं किया जायेगा अथवा किसी उचित दण्ड का भागी बनेगा ।

एक बार यदि हरिजनों तथा परिगणित जातियों में से शराब तथा अन्य नशों का दुर्व्यसन दूर हो जाये तो वे शीघ्र ही सुधार पथ पर तेजी से चल पड़ें । जातीय नेताओं को अपनी जिम्मेदारी तथा अपने महान कर्तव्य को समझना चाहिए और अपने तथा अपनी जाति के हित में शराब पीना छोड़ ही देना चाहिए । इसी में उनकी शोभा है, इसी में महानता है, बड़प्पन है ।

मुखियों तथा चौधरियों को चाहिए कि वे पंचायतों के निर्णयानुसार किसी साधारण–सी रीति–रिवाज के तोड़ने पर अक्सर 'पूरी बिरादरी की रसोई' लेने के रिवाज को बन्द कर दें । आजकल किसी से दस–बीस–पचास व्यक्तियों की भी रसोई लेने का अर्थ है उसकी आर्थिक हत्या कर देना । कोई भी गरीब हरिजन भाई 'पंच बिरादरी की खर्चीली रसोई' का दण्ड पूरा करने के लिए या तो घर का सारा सामान बेचे और यदि सामान न हो, जैसा कि प्रायः होता ही है, तो किसी से उसकी मनमानी शर्तों पर कर्ज लाकर सदा के लिए ब्याज की बलिवेदी पर चढ़ जाये । किसी का आर्थिक विनाश कर देना स्वयं एक दूसरा अपराध है जो कि बिरादरी के जिम्मेदार मुखियों को नहीं करना चाहिए ।

अधिकतर हरिजन जातियों के अनुष्ठानों में भी शराब तथा पशु–बलि की ही प्रधानता होती है और उसका पुरोहित भी बहुधा जातीय चौधरी ही हुआ करता है । चौधरियों को चाहिए कि वे पूजा अनुष्ठानों की पवित्रता तथा उनकी महत्ता को समझें और उनके

आयोजनों में से इस प्रकार की अपवित्रताओं को निकाल फेंकें ।

हरिजनों तथा परिगणित जातियों को चाहिए कि वे अपनी पंचायतों को सुधार–समितियों में बदल दें । अपनी इन पंचायतों अथवा सुधार–समितियों से सदस्य तथा प्रमुख ऐसे व्यक्तियों को चुनों जो दुर्गुणों से मुक्त, शिक्षित तथा उनके सच्चे हितैषी हों । उन्हें साहसपूर्वक गलत रास्ते पर ले जाने वाले चौधरियों तथा मुखिया को पंचायतों से निकाल फेंकना चाहिए । परिवर्तन संसार का अटल नियम है, जो इस नियम का अनुगमन नहीं करता उसका हित असम्भाव्य हो जाता है ।

हरिजन सुधार समितियों तथा पंचायतों को अपनी जाति के लिए नैतिक नियमों का निर्माण करना चाहिए, एक आचरण संहिता बनानी चाहिए, जिसकी धाराओं में शराब, जुआ, चोरी, गन्दगी, झगड़ा तथा अन्य प्रकार के दुर्व्यसनों पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए । पशु–बलि, मांस–भक्षण, अन्ध–विश्वास आदि घातक प्रवृत्तियों को अपराध घोषित किया जाना चाहिए । साथ ही इन नियमों का पालन करने वाले के लिए प्रायश्चित तथा दण्ड की भी व्यवस्था होनी चाहिए ।

सवर्णों की अपेक्षा हरिजनों को यह एक बड़ी सुविधा है कि उनकी जाति में पंचायत प्रथा आज भी विद्यमान है और उसके निर्णयों में हर हरिजन को पूरी आस्था है । यदि वे अपनी पंचायतों का सुधार कर लें तो उनके माध्यम से अपनी जाति का काया–कल्प ही कर सकते हैं । अभी तक हरिजनों की यह पंचायत दकियानूसी परम्पराओं के अनुसार यों ही अस्त–व्यस्त चली आ रही थीं । अब चाहिए के वे उनका गठन व्यवस्थित तथा वैधानिक रूप करें । नियमानुसार उनका चुनाव किया जाये । उचित सदस्य तथा योग्य मुखिया अथवा चौधरियों को ही उनका संचालन सौंपा जाये ।

जिस प्रकार समिति की सुधार संहिता में दुर्व्यसन तथा दुष्प्रवृत्तियों पर प्रतिबन्ध लगाया जाये उसी प्रकार उसमें शिक्षा, सफाई तथा सुधार को अनिवार्य कर दिया जाये । ऐसा नहीं कि हरिजनों के लिए इस प्रकार की सुधार समितियाँ कोई नई बात हों । अनेक प्रान्तों, जिलों तथा क्षेत्रों में इस प्रकार सुधार तथा विकास समितियाँ बनी हैं और बनती

जा रही हैं । इस समय परिगणित जातियों में आदिवासी लोग इस मामले में दिन–दिन आगे बढ़ते जा रहे हैं ।

यह एक शाश्वत सत्य है कि जिन समाजों में जब–जब जो सुधार, परिवर्तन अथवा क्रान्तियाँ आई हैं कि वे शिक्षित तरुणवर्ग द्वारा ही लाई गई हैं, इसलिए हरिजनों के शिक्षित वर्ग को ही अपने समाज सुधार करने का दायित्व अपने कन्धों पर लेना चाहिए ।

शिक्षित हरिजन यह करें–

हरिजनों का शिक्षित तरुण–वर्ग, जो अपेक्षाकृत कुछ अधिक साफ–सुथरा ही होगा, टोलियाँ बनाकर हरिजन बस्तियों में जाये और उनको सफाई व स्वच्छता की प्रेरणा देने के साथ मोहल्ले–बस्तियों की सफाई करने में सहयोग करे । जब उनके अशिक्षित हरिजन भाई अपने साफ–सुथरे तथा पढ़े–लिखे युवकों को स्वर्गीय स्वच्छता–सफाई में अपना हाथ बँटाते देखेंगे तो उनको साफ–सुथरा पहनने का उत्साह प्राप्त होगा । यदि हरिजन सफाई से रहना प्रारंभ कर दें तो भी उनका कुछ न कुछ मनोविकास होना शुरू हो जाये, जो कि उनके सुधार में बड़ा सहायक होगा । सुधार का प्रथम सोपान सफाई को ही माना गया है ।

इतना ही नहीं हरिजनों की शिक्षित टोलियों को चाहिए कि वे मुहल्ले बस्तियों में श्रमदान समितियाँ तथा स्वयंसेवेक दल गठित करायें जिनका काम सप्ताह अथवा पक्ष में एक बार पूरे मोहल्ले की सफाई करना तो होगा ही साथ ही वे एक–दूसरे को अपने कच्चे मकान बनाने, उनकी लिपाई–पुताई तथा मरम्मत करने में भी सहायता किया करेंगे । इस प्रकार श्रमदान से हरिजनों की कच्चा मकान तथा गन्दी बस्ती साफ–सुथरी होकर देखने योग्य बन जायेगी ।

शिक्षित हरिजनों को चाहिए कि अपने वर्ग में अधिक से अधिक शिक्षा का प्रसार एवं विचार करें । जहाँ जिन–जिन बस्तियों के हरिजन अपने बच्चों को पढ़ने न भेजते हों वहाँ जायें और उन्हें शिक्षा का महत्व समझाते हुए बच्चों को पाठशाला भेजने के लिए प्रेरित करें । बच्चों की पाठशाला के अतिरिक्त उन्हें प्रौढ़ों की रात्रि पाठशाला भी चलानी चाहिए ।

मानसिक विकास के लिए यह करें–

शिक्षितों को चाहिए कि वे हरिजन प्रौढ़ों को समय–समय पर जाकर समाचार पत्र तथा पुस्तकें सुनायें । इन समाचारों तथा पुस्तकों के विषय यथासम्भव हरिजन विकास से सम्बन्धित ही होना चाहिए । उन्हें ऐसे समाचार विशेष रूप से सुनाना चाहिए जिनमें बताया गया हो कि कहाँ किस जगह अन्य आदिवासियों तथा परिगणित लोगों ने किस प्रकार क्या–क्या उन्नति की ? उन्होंने अन्धविश्वास छोड़कर क्या–क्या लाभ उठाये और कहाँ–कहाँ अन्ध–विश्वास के कारण उन्हें क्या–क्या हानियाँ हुई हैं । दादू, रविदास, नामदेव, वाल्मीकि, शबरी, केवट, एकलव्य आदि हरिजन महापुरुषों की कथायें सुनानी चाहिए । इस प्रकार कथायें तथा घटनायें उनके हीन संस्कारों को निकाल फेकेंगी और उनके हृदयों में आत्म–विकास की भावनाऐं जाग उठेंगी । इस प्रकार उनका मनो–विस्तार होगा । विश्व की व्यापकता से उनका मानसिक सम्बन्ध स्थापित होगा, जो उनके संकीर्ण तथा प्रतिगामी विचारों में सुधार लायेगा ।

इस प्रकार जब प्रौढ़ों की अभिरुचि समाचार पत्रों तथा पुस्तकों में उत्पन्न हो जाये तो फिर उन्हें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए । विश्वास है कि अनेक लोग पढ़ने के लिए तैयार हो जायेंगे । एक बार दो–चार लोगों को पढ़ने के लिए तैयार कर लेने पर फिर तो अन्य लोग भी रुचि से अथवा स्पर्द्धावश पढ़ने लगेंगे । जहाँ जिस प्रकार का वातावरण पैदा हो जाता है, वहाँ लोग उसी हवा के साथ बहने लगते हैं । बहुत बार कुछ हरिजन प्रौढ़ पढ़े–लिखे भी होते हैं । किन्तु वे अपनी शिक्षा अथवा साक्षरता को बढ़ाने का प्रयत्न नहीं करते । बल्कि मनोरंजन के लिए संगीत, किस्सा तोता–मैना, लैला–मजनू, रसिया, आल्हा अथवा अन्य गन्दी किताबें पढ़ने में ही लगे रहते हैं । वे केवल पढ़ते ही नहीं अन्य लोगों को भी सुनाते हैं । इस प्रकार के अवांछनीय साहित्य का बड़ा ही खराब प्रभाव पड़ता है ।

इस प्रकार की पुस्तकें पढ़ने में रुचि रखने वालों को अच्छी–अच्छी जीवन–विकास सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने के लिए दी जानी चाहिए । उनकी शिक्षा को आगे बढ़ाने का प्रयत्न तथा सुरुचिपूर्ण

पुस्तकालय एवं वाचनालय स्थापित किए जाने चाहिए । ऐसे पढ़ने के जिज्ञासु हरिजनों को एकत्र कर उनकी एक अध्ययन गोष्ठी बनाई जा सकती है । नित्य संध्या समय उनको पुस्तकालय तथा वाचनालय में आने के लिए प्रेरित किया जा सकता है । उन्हीं में से अनेकों को पुस्तकालय तथा वाचनालयों का अध्यक्ष, प्रबन्धक एवं व्यवस्थापक बनाया जा सकता है । उन्हें इस बात के लिए प्रेरित करना भी बड़ा लाभदायक होगा कि वे मोहल्लों में लोगों को सन्ध्या समय इकट्ठा करके अच्छी–अच्छी पुस्तकें सुनाया करें । इससे उनका भी अभ्यास बढ़ेगा और दूसरे लोगों की ज्ञान–वृद्धि होगी ।

हरिजनों का शिक्षित वर्ग अपने बच्चों को तो पाठशाला भेजेगा ही अपने प्रौढ़ों को भी शिक्षित बनाने का प्रयत्न करेगा साथ ही अपनी पत्नियों को तो अवश्य पढ़ायें । किसी भी शिक्षित की पत्नी ऐसी न रहे जो पढ़ी–लिखी न हो । पत्नियों को पढ़ा–लिखाकर वे हरिजनों की अशिक्षित, अन्ध–विश्वासिनी तथा गन्दी स्त्रियों में जाकर अच्छा काम कर सकती हैं । वे उन्हें साक्षर बना सकती हैं, उनको स्वच्छ रहने तथा बच्चों को पाठशाला भेजने को प्रोत्साहित कर सकती है । साथ ही विविध प्रकार की घटनाऐं तथा कथायें सुनाकर उनका अन्ध–विश्वास दूर कर सकती हैं । कोई भी देश, राष्ट्र, समाज अथवा वर्ग क्यों न हो, जब तक उनके दोनों अंग–स्त्री पुरुष समान रूप से नहीं सुधरेंगे वह वांछित प्रगति नहीं कर सकता । शिक्षित लोग जब अपनी पत्नियों को शिक्षित तथा सुसंस्कृत बनाकर जनसेवा के क्षेत्र में भेजकर व्यक्तिगत उदाहरण उपस्थित करेंगे तो अन्य लोग उन पर विश्वास करेंगे और उनका अनुकरण करने का प्रयत्न करेंगे ।

अन्ध विश्वास का निराकरण–

झूठे देवी–देवताओं के नाम पर पशुबलि करना, भूत, चुड़ैल, प्रेत, पिशाच, जिन्द, बैताल आदि विकृत आत्माओं में विश्वास करना हरिजनों की ऐसी दुर्बलता है जिससे धर्म के नाम पर उनकी आत्मा अन्धेरे में ही भटकती रहती है । इस प्रकार के अन्ध–विश्वास किसी भी समाज की उन्नति तथा प्रगति में बहुत बाधक हुआ करते हैं । अन्ध विश्वास जन्य

आकस्मिक घटनायें तो दूर वे बीमारियों तक को किसी देवता का कोप मानते हैं और उनकी प्रसन्नता को ही उनका उपचार मानकर विविध क्रियायें किया करते हैं । जिनमें पशु–पक्षियों का बलिदान प्रमुख है । हरिजनों में अन्ध–विश्वास की जड़ें बहुत गहरी उतर चुकी हैं । उन्हें उखाड़ फेंकने के लिए अपेक्षाकृत अधिक साहस तथा प्रयत्न करने की आवश्यकता है ।

हरिजनों में अन्ध–विश्वासों का आधार धर्म ही है । वे अपनी इस विकृति तथा इससे सम्बन्धित कुक्रियाओं को धर्म–कर्म मानते हैं । इसलिए इसका विरोध भी धार्मिक आधार पर ही ठीक रहेगा । शिक्षितों को चाहिए कि वे अपने अज्ञान ग्रस्त बन्धुओं को धर्म का सच्चा स्वरूप बतलायें । उन्हें धार्मिक कथायें तथा पुस्तकें सुनायें । मान्यतावान धार्मिक व्यक्तियों के उदाहरण दें । ऐसे मान्य महापुरुषों के जीवन–चरित्र सुनायें जिन्होंने अन्ध विश्वासों को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया हो । इसके साथ हरिजनों के अन्ध अनुष्ठानों के स्थान पर हवन, पूजा, पारायण, कीर्तन आदि की परम्पराऐं चलाई जा सकती हैं । रामायण, गीता अथवा किसी अन्य धर्म–ग्रन्थ की कथा बिठाली जा सकती है । इस कार्य के लिए यदि उन्हें कोई पण्डित न भी मिले तो शिक्षित हरिजन स्वयं ही इस कार्य को कर सकते हैं ।

जब तक समाज में ऐसी परिस्थितियाँ नहीं आतीं कि हरिजन लोग सवर्णों द्वारा संचालित मन्दिरों में जाकर पूजा–पाठ कर सकें तब तक राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा आदि की प्रतिमाओं के साथ हरिजन अपने छोटे–छोटे मन्दिर अलग बनाकर पूजा कर सकते हैं । बाद में अनुकूल समय आने पर सवर्णों तथा हरिजनों के मन्दिरों में अन्तर ही नहीं रहेगा । इस प्रकार धर्म के विषय में अज्ञान मिट जाने से हरिजनों के अन्ध–विश्वास दूर होने लगेंगे ।

कुरीतियाँ दूर करें–

शिक्षित तथा प्रगतिशील हरिजन तरुणों को अपनी सामाजिक कुरीतियों की ओर भी ध्यान देना चाहिए । सबसे पहले बाल–विवाह की प्रथा जो कि हरिजनों के बीच व्यापक रूप से फैली हुई है, को दूर

किए जाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए । इसके लिए भी व्यक्तिगत उदाहरण का प्रभाव बड़ा सहायक सिद्ध होगा । शिक्षित अछूत–वर्ग अपनी बहिनों, बेटियों तथा बेटे, भतीजों का विवाह कम उम्र में न करें और न होने दें । इसके लिए भी यदि करना पड़े तो सत्याग्रह अनुचित नहीं कहा जा सकता । साथ ही वे अपने बालक–बालिकाओं को इस प्रकार की शिक्षा दें कि आगे चलकर वे भी अपने बच्चों का विवाह परिपक्व आयु में ही करें । बाल–विवाह के प्रतिरोध में शिक्षित वर्ग अपने प्रभाव से पंचायती नियम बनाकर इस प्रथा पर प्रतिबन्ध लगवा सकते हैं ।

हरिजनों को चाहिए कि वे अपने आर्थिक हित की दृष्टि से वैवाहिक अपव्ययों को तो बिल्कुल ही बन्द कर दें । उन्हें इस विषय में अर्थोन्मादी सवर्णों की नकल नहीं करनी चाहिए । हरिजनों के विवाहों में नाच, स्वाँग, नौटंकी तथा लड़कों को नचाया जाना घोर अश्लील तथा असभ्य परम्परा है । यह परम्परा उनकी एक विवाह शर्त बनी हुई है । विवाह भोज के समय शराब तथा पशुओं का माँस पाप की तरह उनके समारोहों में प्रवेश किए हुए हैं । क्या शिक्षित तथा क्या अशिक्षित सभी हरिजनों को इन वैवाहिक कुरीतियों को तो दूर कर देना चाहिए । इससे उनके विवाह समारोह शोभन एवं मितव्ययी हो जायेंगे ।

शिक्षित तथा प्रगतिशील हरिजन तरुणों को चाहिए कि कुरीतिपूर्ण विवाहों से असहयोग प्रकट करें । अपने तथा अपने भाई–बहिनों के विवाहों के अवसर पर स्वाँग, नाच, नौटंकी आदि का आयोजन न होने दें और न शराब अथवा माँस ही चलने दें । शिक्षित तरुण–वर्ग अशिक्षित तरुण वर्ग को इस सुधार में अपना अनुयायी बना सकता है । गाजा–बाजा, धूम–धड़ाका तथा अन्य प्रकार के प्रदर्शनपूर्ण आयोजन सवर्ण–विवाहों की कुरीतियाँ हैं । इनका अनुकरण हरिजन भाइयों को नहीं करना चाहिए । सरल संक्षिप्त तथा मितव्ययी आदर्श–विवाह पद्धति बहुत ही उपयोगी तथा उचित रहेगी ।

अपनी हरिजन जातियों में सवर्णों की तरह ही एक दहेज प्रथा प्रचलित है । अन्तर केवल यह है कि सवर्णों में लड़के वाला लड़की वाले से दहेज लेता है और हरिजनों में लड़की वाला लड़के वाले से

रुपया वसूल करता है । यह भी दहेज की ही तरह एक कुरीति है । कोई पक्ष किसी से भी क्यों न ले इस लेन–देन का परिणाम एक जैसा ही होता है । इस कुप्रथा से सवर्णों में जहाँ लड़की वाला त्रस्त होता है वहाँ हरिजनों में लड़के वाला । समाज को शुद्ध, स्वच्छ तथा स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक है कि बुराइयों की उत्पादक कुप्रथाओं को अवश्य दूर किया जाय ।

हरिजन साधुओं का विशेष कर्तव्य–

हरिजन साधु तथा महात्मा लोग भी इस सुधार कार्य में बहुत कुछ योगदान कर सकते हैं । हरिजनों की भजन तथा संगीत मण्डलियाँ इन्हीं के तत्वावधान में अधिकतर गाना–बजाना किया करती हैं । यह साधु अच्छे–अच्छे सुधारात्मक भजन कीर्तनों का संकलन करके हरिजनों में प्रचार कर सकते हैं । साधु–महात्माओं के बताये हुए भजन–कीर्तन हरिजन लोग भी जल्दी अपना लेते हैं । साधु–महात्माओं के तत्वावधान में चलने वाली भजन मण्डलियाँ हरिजन समाज में बहुत सुधार का कार्य कर सकती हैं । वे टोली बना–बनाकर हरिजन बस्तियों में जाकर सुधार–प्रचार कर सकती हैं, उनमें शिक्षा, स्वच्छता तथा निर्व्यसनता की प्रवृत्ति जगा सकती हैं ।

अभी तक बहुधा होता यह है कि हरिजन साधु–महात्मा बस्तियों में जाकर आसन जमा देते हैं । लोगों से भोजन तथा सेवा प्राप्त करने के साथ–साथ गाँजा, चरस तथा चिलम तम्बाकू का दौर चलाया करते हैं । अब उन्हें चाहिए कि वे इन अवांछनीय कार्यक्रमों का परित्याग करके साधु परम्परा के अनुरूप हरिजन भाइयों के सुधार का प्रयत्न करें । उन्हें चाहिए कि वे स्वयं तो गाँजा, चरस व चिलम तम्बाकू आदि नशे को छोड़ ही दें साथ ही हरिजनों को भी छोड़ने की प्रेरणा दें । इसके लिए वे उन्हें नशों से होने वाली हानियाँ बता सकते हैं, उन्हें उपदेश दे सकते हैं और उन्हें छोड़ने की प्रतिज्ञायें करा सकते हैं ।

साधुओं के सुधार वाक्य हरिजनों के अन्ध विश्वास पशुबलि तथा समाज की अन्ध परम्पराओं पर वज्रपात सिद्ध हो सकते हैं । भूत–प्रेत, मियाँ, मसान आदिक विश्वास प्रायः आडम्बरी साधुओं के ही चलाये हुए

होते हैं । बेचारे भोले-भाले लोग साधु-बाबाओं के पवित्र वेश तथा धार्मिक शब्दावली में श्रद्धा रखकर उनके दिये हुए अन्ध-विश्वासों को धर्म मान लेते हैं और भूत-प्रेत, वीर-बैताल की पूजा करने लगते हैं । उन्हें पशुबलि तथा शराब आदि चढ़ाने लगते हैं । धीरे-धीरे यह सब कुप्रथायें उनके संस्कारों में शामिल हो जाती है और वे इनके परम्परागत बन्दी बन जाते हैं । साधुओं को चाहिए कि अब वे हरिजनों के बीच फैली कुरीतियों, अन्ध-परम्पराओं, भ्रान्त धारणाओं तथा मूढ़ मान्यताओं को दूर करके उनमें सत्प्रवृत्तियों का विकास करें ।

कथा, विवाह, हवन, षोडश संस्कार आदि धार्मिक कर्मकाण्डों से हरिजनों को प्रायः वञ्चित ही रहना पड़ता है । सवर्ण पण्डित पुरोहित उनसे दान-दक्षिणा तो खुशी-खुशी वसूल कर लेते हैं, पर उनके घरों में विवाह आदि संस्कार कराने एवं कथा-वार्त्ता आदि सुनाने नहीं आते । इस अभाव के कारण हरिजनों को अपने धर्म की महत्वपूर्ण जानकारियों तथा रीति-रिवाजों से अनभिज्ञ ही रहना पड़ता है । इस अभाव की पूर्ति हरिजन-साधु आसानी से कर सकते हैं । वे अध्ययन करें । इससे उनमें चेतना भी बढ़ेगी, साथ ही इन साधुओं को अधिक सम्मान तथा सहयोग भी मिलेगा । यह कार्य कोई सुशिक्षित हरिजन गृहस्थ भी कर सकते हैं । सवर्ण पण्डित पुरोहितों की तरह अपने वर्ग में वे महत्वपूर्ण बौद्धिक सेवा करते हुए अपना गुजारा भी आसानी से चला सकते हैं ।

परस्पर भी ऊँच-नीच-

एक बहुत बड़ा दुर्भाग्य यह है कि हरिजनों के बीच परस्पर के व्यवहार में भी छूआछूत तथा ऊँच-नीच का दोष फैला हुआ है । हरिजनों में भी अनेक जातियाँ, उपजातियाँ तथा वर्ग ऐसे हैं जिनको अनेक हरिजन जातियाँ अछूत तथा अपने से नीची समझती हैं । न उनके साथ व्याह-शादियाँ करते हैं, न सामाजिक सम्पर्क रखते हैं, न उनके हाथ का पानी पीते हैं और छूते ही हैं । हरिजनों के बीच इस प्रकार की अछूत-प्रथा न केवल आश्चर्य अपितु दुख का विषय है । जो हरिजन आज सवर्णों पर छुआ-छूत का आरोप लगाकर समाज में समानता का अधिकार माँगते हैं उन्हें क्या अपने बीच फैली इस प्रकार

की ऊँच–नीच तथा छुआ–छूत की भावना पर नहीं विचार करना चाहिए ? उन्हें सोचना चाहिए कि जब वे स्वयं ही अपने बहुत से भाइयों से सामाजिक सम्पर्क रखने में संकोच करते हैं, उन्हें समानता का अधिकार नहीं देते हैं । उन्हें छूने अथवा उनके हाथ का पानी लेने में घृणा करते हैं तब क्या वे सवर्णों से समानता का अधिकार माँगने के अधिकारी हो सकते हैं ? जो स्वयं ही जिस विकृति का दोषी है, वह भला उस विकृति का दोष दूसरों पर किस प्रकार लगाने का अधिकारी हो सकता है । रूढ़िवादी सवर्णों के पास अछूतों को न मिलाने का यह एक बहुत ही ठोस बहाना है । हरिजनों को चाहिए कि सवर्णों से समानता का अधिकार पाने के लिए उनके इस बहाने को निर्मूल सिद्ध कर दें । अपनों में नीच तथा अछूत कहलाने वाले अपने भाइयों को गले लगायें, उनके साथ हर तरह का सामाजिक सम्पर्क स्थापित करें । उन्हें उठायें और समानता का अधिकार दें और तब आगे बढ़कर सवर्णों से समानता का अधिकार माँगें । अपना दोष दूर करके अपना सामाजिक स्वत्व माँगना समर्थ एवं समीचीन होगा ।

हरिजन क्रिस्तान न बनें–

इन सामाजिक, शारीरिक, बौद्धिक तथा मानसिक सुधारों के साथ–साथ हरिजनों में जो एक बहुत बड़े सुधार की आवश्यकता है वह है उनके धर्म परिवर्तन की प्रवृत्ति । पिछले बीस साल के अरसे में ही लाखों हरिजन, आदिवासी तथा परिगणित जाति के व्यक्ति मुसलमान तथा ईसाई बन गये हैं । यद्यपि पूरी तरह से बन्द न होने पर भी हिन्दुओं को मुसलमान बनाने की प्रवृत्ति कुछ कम देखने में आ रही है किन्तु ईसाइयों की गतिविधियाँ भयानक रूप से बढ़ गई हैं । इस समय तक भारत के पच्चीस–तीस लाख हिन्दू ईसाई बन चुके हैं और यह तीसों लाख अपने–अपने ढंग से हिन्दुओं को ईसाई बनाने में लगे हुए हैं । यदि इस प्रकार एक हिन्दू ईसाई एक हिन्दू को भी अपने जीवन में ईसाई बना सका तो हिन्दू जाति की कुछ ही दिनों में क्या दशा हो सकती है और ईसाइयों की कितनी संख्या बढ़ सकती है ? इसकी कल्पना मात्र से ही रोमांच होने लगता है ।

सवर्णों का कर्तव्य है कि वे अपनी प्रतिगामिता दूर कर शीघ्र ही हरिजनो को गले लगाकर उन्हें हिन्दू समाज का समान अंग होने का आश्वासन दें । उनका सामाजिक बहिष्कार करके हिन्दू समाज के प्रति विश्वास पैदा करें । उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता तथा धार्मिक एवं सार्वजनिक स्थानों पर आने–जाने का अवसर देकर हिन्दू धर्म में उनकी निष्ठा गहरी करें । ईसाइयों की तरह ही सामाजिक कार्यकर्त्ता तथा संस्थायें उनके बीच जाकर शिक्षा सुदपदेश तथा दवाओं आदि का वितरण करें । ईसाइयों की तरह ही हिन्दू कार्यकर्त्ता उनकी बस्तियों में जाकर शिविर करें और उन्हें ईसाइयों के प्रपञ्चों से बचाऐं ।

इस दिशा में सवर्णों को तो अपना कर्तव्य करना ही चाहिए, अछूतों के पढ़े–लिखे तथा समझदार वर्ग को अपने प्रयत्न में कोई कमी रखनी ही नहीं चाहिए । हरिजन कार्यकर्त्ताओं को चाहिए कि वे ईसाई प्रपञ्चों के मुकाबले में खड़े हों और अपने जाति भाइयों को समझायें कि अपने हिन्दू धर्म का त्याग करके उनका ईसाई बनना ठीक नहीं । न तो यह लोक के लिए हितकर है और न परलोक के लिए । अपना धर्म छोड़ने से परलोक तो नष्ट होता ही है इस लोक में भी कोई लाभ नहीं होता । उन्हें चाहिए कि वे अपने हरिजन भाइयों को बतलायें कि ईसाइयों का क्रिस्तान बनाना एक राजनीतिक षडयन्त्र है । विदेश से आये ईसाई मिशनरी हरिजनों, आदिवासियों तथा परिगणित लोगों को ईसाई बनाकर भारत में ईसाइयों की संख्या बढ़ा रहे हैं जिससे कि वे आगे चलकर ईसाइयों के बहुमत के बल पर इंग्लैण्ड अथवा अमेरिका की पिट्ठू सरकार बना सकें और इस प्रकार हमारे देश को अपने प्रभाव के नीचे लाकर शोषण कर सकें और जब अवसर आये तो भारतवासियों को गुलाम बना सकें । हरिजन कार्यकर्त्ताओं को ईसाई बनाने से रोकना तो चाहिए ही साथ ही जो अज्ञानवश हो गये हैं उन्हें पुनः अपने धर्म में आने के लिए प्रेरित करना चाहिए ।

सेवा–निवृत्त वयोवृद्ध इधर कदम बढ़ावें–

इस सुधार कार्य में सेवा निवृत्त अधिकारी बहुत कुछ कर सकते हैं । पैन्शन पाने के बाद उन्हें शेष जीवन आराम से पड़े–पड़े नहीं

गुजारना चाहिए । उन्हें चाहिए कि वे अपने अवकाश का एक-एक क्षण जातीय उद्धार में लगायें । जिसकी जाति, जिसका वर्ग अथवा जिसके भाई पतन के गर्त में गिरे हुए नारकीय जीवन बिता रहे हों उस शिक्षित अथवा समझदार को सुख की नींद सोने का कोई अधिकार नहीं है । हरिजन अधिकारी, कर्मचारी तथा उन्नतिशील लोगों के प्रयास से बड़ा जागरण आ सकता है । उन्नतिशील व्यक्तियों के प्रचार तथा उदाहरण के प्रभाव से उनका पिछड़ापन दूर हो सकता है और अनेक वृद्धजन अथवा ऐसे हरिजन मिल सकते हैं जिनके पास अवकाश हो । यही क्यों, वृद्ध लोग यदि चाहें तो अपने वर्ग का कायाकल्प ही कर सकते हैं । उन्नति प्राप्त हरिजन कर्मचारी हरिजनों की पंचायतों को गहराई तक प्रभावित कर सकते हैं और हरिजनों की शक्तिमती पञ्चायतें अपने समाज की नव्य-रचना में सराहनीय योगदान दे सकती है ।

शिक्षित, समझदार, सेवा-निवृत्त तथा वयोवृद्ध हरिजनों को तो अपने समाज का सुधार करने में जी-जान से जुट ही जाना चाहिए, साथ ही सामान्य हरिजनों को भी सोते नहीं रहना चाहिए । उन्हें अपनी आँखें तथा मस्तिष्क को खोलकर समय की चाल को पहचानना चाहिए । अपनी दयनीय दशा पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए और आत्म-सुधार के लिए कमर कसकर खड़े हो जाना चाहिए ।

सुविधा उत्पन्न करने के रचनात्मक कार्य-

यह तो हमारा सामाजिक ढाँचा ही है कि आज हरिजन भाइयों को बहुत से कामों में दिक्कत होती है । जैसे धोबी उनके कपड़े नहीं धोते, नाई उनके बाल नहीं बनाते, हलवाई उनके यहाँ मिठाई नहीं बनाने जाते और अन्य शिल्पी उनके मकान तथा कपड़े बनाने में ऐतराज करते हैं । इन छोटी-छोटी सामाजिक प्रतिगामिताओं से कुछ कम कष्ट तथा असुविधा नहीं होती । हरिजनों को चाहिए कि समाज के सुधरने तक वे इन छोटी-छोटी बातों को स्वयं सीख लें और आवश्यक शिल्पों का विकास कर लें । ऐसा करने से उन्हें न तो द्वेषजनक नकारात्मक उत्तर सुनने को मिलेगा और न असुविधा ही होगी । साथ ही अनेक शिल्प सीख जाने से उनकी आर्थिक दशा में भी सुधार होगा । इसके अतिरिक्त

सुधार तथा विकास के लिए उन्हें अपने उपभोक्ता–भण्डार, सहकारी समितियाँ तथा कताई–बुनाई आदि के छोटे–छोटे उद्योग–धन्धे शुरू करने चाहिए ।

छोटे–छोटे तथा घरेलू उद्योग–धन्धों के साथ हरिजनों को खेती–बाड़ी, शाक–सब्जी तथा फलों के उत्पादन की ओर भी बढ़ना चाहिए । मशीनरी का काम, लौह तथा काष्ठकला भी हरिजनों के आर्थिक विकास में बहुत कुछ सहायक हो सकती है । अभी तक हरिजन स्त्रियाँ खेतों पर मेहनत करने चली जाया करती थीं, जिससे कि उन्हें लगभग वर्ष भर के लिए अनाज तथा कुछ पैसा मिल जाया करता था जो कि परिवार के जीवनयापन में बहुत सहायक होता था । किन्तु कुछ आलस्य, कुछ सामाजिक द्वेष के कारण हरिजनों ने अपनी स्त्रियों को खेतों पर काम करने के लिए जाने से रोकना शुरू कर दिया है । इससे न केवल उनके आर्थिक ढाँचे पर ही कुप्रभाव पड़ा है, स्त्रियों के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ा है । हरिजनों का यह दृष्टिकोण ठीक नहीं । उन्हें सवर्णों की तरह अपनी स्त्रियों को घर में बन्द रखने की नकल नहीं करनी चाहिए और न मेहनत–मजदूरी को ही हीन समझना चाहिए । उन्हें न केवल स्त्रियों को ही खेतों पर काम करने के लिए भेजना चाहिए वरन् स्वयं भी जाकर खेती–बारी का काम अवश्य सीख लेना चाहिए ।

एक समय था जब हरिजन जातियों तथा परिगणित जातियों का स्वास्थ्य सवर्णों की अपेक्षा बहुत ही अच्छा था । इसका कारण था कि उसमें कसरत करने तथा कुश्ती लड़ने का शौक था साथ ही वे अधिक से अधिक प्राकृतिक जीवन तथा प्रकृति के सम्पर्क में रहने में विश्वास करते थे । किन्तु अब हरिजनों में भी सवर्णों की नकल करते–करते कृत्रिम जीवन तथा फैशन व सुकुमारता का रोग लग गया है । सवर्णों की यह हानिकारक नकल हरिजनों के स्वास्थ्य को चौपट किए दे रही है । हरिजनों को चाहिए कि वे अपनी इस हीन तथा हानिकारक अनुकरण वृत्ति को छोड़ें और अपनी स्वास्थ्य सम्पदा की रक्षा करें । वह समय बहुत पीछे नहीं गया जब कि हरिजनों के न जाने कितने अखाड़े चलते

थे । जिनमें वे पटा, बाना, तेग, फरी, गदका आदि की शास्त्रीय कला का अभ्यास किया करते थे ।

इस प्रकार यह और अनेक प्रकार की योजनाओं को कार्यान्वित करके हरिजन उद्धार का राष्ट्रीय कार्य सरलतापूर्वक किया जा सकता है । सवर्णों से लेकर सामान्य हरिजनों तथा हर एक को अछूतोद्धार के इस राष्ट्रीय कर्तव्य में लगकर, अब्राहम लिंकन, दयानन्द, महात्मा गाँधी, ठक्कर, बापा, कनेडी तथा कबीर, नानक, दादू, रविदास आदि महात्माओं के स्वप्न साकार करने ही चाहिए ।

हरिजन–उत्थान मानव–गरिमा की प्रतिष्ठा

भारतीय समाज में मानव की गरिमा के सिद्धान्त को प्रतिष्ठित करना गाँधी जी का भारतीय संस्कृति को एक महान् योगदान था । उन्होंने हरिजन कल्याण के लिए बड़ा काम किया । उसी का प्रतिफल था कि संविधान में अस्पृश्यता उन्मूलन की घोषणा की गई । किन्तु यदि इतिहास के पिछले पन्ने उलटकर देखे जायें तो पता चलेगा कि कानून बनाकर अस्पृश्यता उन्मूलन की बात सोचना कुछ खटकता–सा है । हरिजन हमारे जीवन के अभिन्न अंग हैं । उनके साथ प्रेम–व्यवहार, मेल–मिलाप रखने के लिए आन्तरिक प्रेरणायें न जागृत हों तो कानून या संविधान की उस घोषणा का भी कोई महत्व नहीं ।

प्राचीन भारत में गुणों के आधार पर हरिजनों को उतना ही सम्मान दिया जाता था जितना सवर्णों को, उसके लिए कोई कानून न था । ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब हरिजनों और सवर्णों में विवाह सम्बन्ध तक होते रहे हैं । आज की अपेक्षा पूर्वज अधिक धार्मिक थे, पर सामाजिक मामलों में पूर्णतया बुद्धि, विवेक और सिद्धान्तवादी थे । आज जैसी विचार संकीर्णता उनमें न थी । यही कारण था कि अपने–अपने कार्य करते हुए भी सामाजिक दृष्टि से मान–मर्यादा सबके लिए एक जैसी थी और इसी कारण हरिजन होने पर भी हरिजन अपने को हिन्दू कहने में गौरव अनुभव करता था और उपेक्षित कार्य करने पर भी वह अपना हित भारतीय धर्म में देखता था इतना ही नहीं वह उस व्यवस्था में

सुखी और सन्तुष्ट भी था ।

वर्ण–भेद सामाजिक व्यवस्था के लिए उपयोगी है, उसके सैद्धान्तिक आधार का बना रहना आवश्यक है अन्यथा जातियों का बिलकुल महत्व नहीं रह जाता । गुण, कर्म एवं स्वभाव को ही वर्ण–भेद का आधार मानते हुए भी पूर्वजों में उनके लिए सामाजिक प्रतिष्ठा की कोई कमी न थी । व्यास और पाराशर मुनि विद्वानों में अब भी पूज्य हैं पर उनकी माताऐं निम्न वर्ण की थीं । पाराशर की माँ श्ववाक (भंगी) की पुत्री थीं, कृप, कुक्षीवान, मात्स्य द्रुपद, श्रृंगी, कश्यप आदि ऋषि–मुनि नीच कुल में पैदा हुए थे पर उन्होंने अपने तप, स्वाध्याय और साधनों से वह प्रतिष्ठा का पद पाया जो अभी भी भारतीय लोग अपने हृदय, मस्तिष्क और आत्मा में भरे हुए हैं । यदि उस समय हरिजनों को मानवीय गरिमा का अंग न माना गया होता तो यह परिस्थितियाँ कहाँ से बन सकती थीं ।

आज जाति भेद के कारण करोड़ों अपनों को पराया बना दिया गया है । अब तक लाखों हिन्दू ईसाई बना लिए गये हैं । कलकत्ते के एक इमाम ने भरी अदालत में यह बयान देकर लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया कि मैंने १० हजार से भी अधिक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया है । धर्म परिवर्तन करने वाले इन हिन्दुओं में हरिजनों की ही संख्या अधिक थी । यह भारतीय समाज की भीतरी मूर्छा का ही परिणाम है कि एक दिन सम्पूर्ण देशों में छाई हुई हिन्दू जाति संख्या, सामर्थ्य और संगठन की दृष्टि से सबसे कमजोर और पिछड़ी हुई जाति रह गई है ।

यह दुर्भाग्य की ही बात है कि जिन तुलसीदास जी ने 'सियाराम मय सब जग जानी, करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी' लिखकर मानव मात्र को परमात्मा का अंश मानकर जन–जन को उत्कृष्टता प्रदान की, यह क्यों मान लिया गया कि–"पूजिय विप्र शील गुण हीना, शूद्र न गुनगन ज्ञान प्रवीणा ।" चौपाई उन्हीं की मान ली गई । जो व्यास स्वयं ही निषाद कन्या के पुत्र थे, उन्होंने–

बर्द्धकी नायिता गोप आभ्रयः कुम्भकारकः ।
वणिक्किरात कायस्थ मालाकार कुटुम्बिकाः ।।
एतेंऽत्यजा समाख्याते येचान्ये व गवाशनाः ।
एषां सम्भषणात् स्नान दर्शनादर्क वीक्षणम् ।।

'अर्थात––बढ़ई, नाई, ग्वाले, कुम्हार, बनिये, किरात, कायस्थ, माली, भंगी, कोल, चाण्डाल ये सब अन्त्यज कहलाते हैं । इन पर दृष्टि पड़े तो सूर्य दर्शन करना चाहिए । बातचीत क़रने के बाद स्नान करने के बाद द्विजाति शुद्ध होते हैं ।" यह कैसे लिखे गये । यह सब हिन्दू–जाति को गिराने के लिए विधिवत कुचक्र ही था । जिसे न तो तुलसीदास जी कह सकते थे न व्यास जी लिख सकते थे । हरिजन भारतीय धर्म संस्कृति के उपासक ही नहीं हिन्दू जाति के अभिन्न अंग बन चुके हैं, उन्हें मानवीय गरिमा प्रदान करके ही हम अपना संगठन सुरक्षित रख सकते हैं । जातियों का यह संगठन कितना उपयोगी और आवश्यक है यह सब अनुभव करते जा रहे हैं ।

बिनोवा जी का यह कथन ध्यान देने और मनन करने योग्य है–"हमको समझना चाहिए कि छुआछूत कायम रखकर क्या हरिजन देश के लिए मर–मिटने को राजी होंगे ? सबके साथ कन्धे से कन्धा लगाकर लड़ने को क्या वे राजी होंगे ? हम मनुष्य के नाते उनके साथ प्रेम सम्बन्ध नहीं जोड़ते । हमारा धर्म कहता है कि अनेक जन्मों में पुण्य से मनुष्य जन्म मिलता है तो हरिजन क्या मनुष्य नहीं हैं ? बिल्ली को भी ब्राह्मणों द्वारा दही–भात खिलाते हमने देखा है, पर मनुष्य से वे घृणा करते हैं । हरिजनों को दूर रखा जाये, यह गलत बात है, अधर्म है, अन्याय है । इस भेद को मिटा कर ही हमारे देश की ताकत बढ़ेगी ।"

हिन्दू–धर्म का सन्देश विदेशों में गया है तो यहीं से गया है । शक, हूण, यहूदी आदि अनेक जातियाँ हिन्दू जाति में इस तरह विलीन हो गईं कि आज उनका अस्तित्व भी नहीं मिल सकता–यह भी हिन्दुओं की उदारता और धार्मिक सद्भावना से ही हुआ है । यदि विदेशियों को अपने में मिलाया और खपाया जा सकता है, यदि उन्हें प्रेरित–प्रभावित करने का यत्न किया जा सकता है तो हरिजनों को मानवोचित सम्मान

से वंचित करना न केवल कलंक की बात होगी, उसे हिन्दू धर्म की मूर्खता ही कहा जायेगा । उस अपमान से बचने में ही कल्याण है ।

हिन्दू समाज में प्रचलित वर्तमान जाति भेद एक संकीर्ण दायरे में व्यक्ति की सामाजिकता को सीमाबद्ध करता है एवं ऊँच–नीच की भावना से विकारग्रस्त हो गया है । इस स्थिति को सुधारा जाय । जातियाँ केवल व्यवसाय की परम्परा से कुशलता उत्पन्न करने के लिए थीं । ऊँच–नीच का इसमें कोई कारण न था । आज की स्थिति ने सारे भारतीय समाज को हजारों छोटे–छोटे भागों में बाँटकर खण्ड–खण्ड एवं अशक्त कर दिया है । इस संकीर्णता ने छूत–अछूत का एक अमानवीय भेदभाव उत्पन्न किया है और उससे खिन्न होकर करोड़ों अछूत कहे जाने वाले लोग हिन्दू धर्म छोड़कर अन्य धर्मों में चले गये तथा जो शेष हैं वे तेजी से विधर्मी होते चले जा रहे हैं । मनुष्य–मनुष्य के बीच ऊँच–नीच का भेदभाव भारतीय धर्म के महान् आदर्शों को ही कलंकित एवं संसार में बदनाम कर रहा है । अब समय आ गया है कि इन भ्रान्त मान्यताओं एवं भेदभावों का निराकरण कर एक भारतीय समाज की भावना को विकसित किया जाय ।

हरिजन उत्कर्ष के लिए सर्वतोमुखी प्रयत्न होने चाहिए । हिन्दू समाज के एक भी सदस्य का पद–दलित रहना हमारे सामाजिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय जीवन के लिए कलंक है । इस कलंक कालिमा को जितनी जल्दी धो डालना संभव हो उसके लिए पूरा–पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिए ।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा